उपसंहार :-

हिंदी नाटकों की बुनियाद वास्तव में भारतेंदु नेरखी। उनके समय तक महिलाओं की स्थिति समाज में हीनतम थी। पश्चिम से आई नारीवादी लहर ने भारतियों का भी ध्यान स्त्री की समस्याओं की ओर आकर्षित किया। क्योंकि अंग्रेज़ो ने भारतियों की खूब भर्त्सना की महिलाओं, दलितों और पिछड़े वर्ग को लेकर। फलस्वरूप भारतेंदु ने स्त्री की समस्याओं को अपने नाटकों में शामिल किया। 19वीं सदी एक तरह से नारी केन्द्रित हुआ पहली बार स्त्री को मनुष्य की तरह देखा गया।

स्त्री, माँ, बहन, पत्नी, बेटी या फिर व्यक्ति? यह सवाल सदियों से कायम है, जिसका सामना हर स्त्री करती रही, करती है और जाने कितनी सदियों तक करती रहेगी। सभ्यता, संस्कृति, धर्म, मर्यादा और कर्तव्यों की दुहाई देकर सदियों से यह पुरूष वर्चस्ववादी समाज स्त्रियों पर अपना आधिपत्य बनाएँ बैठा है। पुरूष प्रधान समाज में नारी को सदैव उपेक्षित तथा अधिकारों से वंचित किया जाता रहा है। स्त्री कभी विवश होकर, तो कभी स्वेच्छा से इसे स्वीकार करती रहती है। पुरूष समाज की यह विडम्बना है कि स्त्री की समझ और व्यवहार कुशलता को भी 'त्रिया चरित्र' कहकर उसकी अवेहलना और भर्तस्ना करने से भी पीछे नहीं हटता।

विद्वानों का मानना है कि कोई भी कला समाज से कटकर जीवित नहीं रह सकतीहै। क्योंकि समाज की विभिन्न परिस्तिथियों, समस्याओं, विडंबनाओं ने बदलते समय के साथ निरंतर कला को भी प्रभावित किया है। फिर चाहे वह साहित्य कला हो, संगीत कला, चित्रकला, मूर्तिकला या नाट्य-कला हो। हिंदी के पुरूष नाटककारों के नाटकों में जब स्त्री चेतना की बात होती है तो यह पाया गया है कि भारतेंदु से पूर्वलंबे समय तक स्त्री चेतना नाटकों में परिलक्षित

नहीं होती है। भारतेंदु काल में स्त्री चेतना थोड़ी बहुत दिखाई देती है किन्तु राष्ट्रहित की भावना, नैतिकता का पाठ, एकता की भावना मुखर हो जाती है और स्त्रियों की जटिलताओं का प्रश्न गौड़ हो जाता है। द्विवेदी युग में हिंदी नाटकों के विकास में शिथिलता पायी जाती है तो स्त्री राशनों की बात ही छोड़ दीजिये। प्रसाद के आते-आते फिर से भारतेंदु के नाट्य आंदोलन को बल मिला। प्रसाद का काल भी पुनर्जागरण का काल था, अतः उनके नाटकों में भी मानवता की भावना, राष्ट्रहित की भावना, नैतिकता आदि विषय मुख्य रूप से देखे गए हैं।

प्रसाद के नाटक में 'ध्रुस्वामिनी' में स्त्री चेतना एक नए रूप में मिलती है। इसमें नाटक के स्त्री चरित्र स्वाभिमान और आत्मसम्मान के लिए संघर्ष करते नज़र आते हैं और निर्णय लेने की क्षमता भी दिखाई देती है। प्रसाद ने भारतेंदु से आगे निकल कर स्त्री चरित्रों को नाटक में स्थान दिया। पर धर्म के समर्थन और परंपराओं में बंध कर न्याय दिलाया। इनके नाटकों में स्त्री पत्रों में नारी सुलभ कोमलता विद्यमान है। 'ध्रुवस्वामिनी' में नारी की समस्या को उठाया, नारी से विद्रोह भी करवाया किन्तु रामगुप्त जैसे कायर और क्लीव पति से छुटकारा दिलाने के लिए धर्म और मर्यादा का सहारा लिया है। वे उन रूढ़ियों को नहीं तोड़ पाये। प्रसाद जी नव-जागरण के सबसे मजबूत स्तम्भ माने जाते हैं। भारतीय नव-जागरण ने समाज में सामूहिकता और स्वाभिमान को स्थान दिया, जो भारतेंदु और प्रसाद के काल के नाटकों में भी पाये गए। साथ ही स्त्री समस्याओं को भी नाटकों में शामिल किया गया।

भारतेंदु के नाटकों में आदर्श नारी चरित्रों और समकालीन समस्याओं को उठाया गया है। इसके विपरीत प्रसाद के नारी के सत्व को और उसमें अंतर्निहित आंतरिक ऊर्जा तथा स्वाभिमान को चित्रित किया गया है। यदि नारीवादी दृष्टिकोण से देखा जाए तो भारतेंदु और प्रसाद युग में नारी की समस्याओं कों उठाया ज़रूर गया पर स्त्री चरित्रों को वह स्थान प्राप्त नहीं हो पाता है।

मोहन राकेश ने आधुनिक काल की स्त्री की समस्या को 'आधे-अधूरे' में उठाया। मध्यवर्ग की पारिवारिक जटिलताओं, विघटन, कुढ़न, उलझन आदि को बख़ूबी प्रस्तुत किया है। स्त्री-पुरुष संबंधों में परिस्थितियों से आई टूटन भलीभांति दृष्टव्य होता है। फिर भी सावित्री और महेंद्र एक दूसरे के साथ रहने को विवश हैं। व्यापक रूप में देखें तो मोहन राकेश की व्यक्तिगत सहानुभूति पुरूष पात्र में ही दिखती है। यहीं सहानुभूति सुरेन्द्र वर्मा के ओक्काक को भी मिलती है। जबकि वर्मा जी ने शीलवती को एक सशक्त नारी के रूप में प्रस्तुत किया है। भीष्म साहनी की 'माधवी' भी पौराणिक मर्यादाओं की प्रस्तुति करती है। वह चुपचाप लगातार हो रहे शोषण का सामना करती रहती है, पितृ सत्ता का इतना वीभत्स चेहरा देख वह अंदर-ही-अंदर घुटती रहती है। माधवी को इस घुटन, शोषण ने उसे आत्मिक रूप से पुरुषवादी समाज से खिन्न कर दिया और प्रेम का भ्रम टूटते ही उसने आश्रम से चले जाने का फैसला किया।

अतः यह नाटक अपने-अपने समय की परिधि में बेशक समाते हैं लेकिन कुछ अपवाद छोडकर समान्यतः नाटककार पुरूष वर्चस्ववादी मानसिकता से ग्रस्त लगते हैं और उस ग्रंथि से छुटकारा नहीं पा सके। आधुनिक समय में स्त्रियों की स्थिति में ख़ास सुधार नहीं आया है। फिर भी स्त्रियों ने पुरूष वर्चस्व वाले समाज में अपनी भूमिका दर्ज की और अपने अस्तित्व को स्थापित किया है। रंगमंच के क्षेत्र में भी स्त्रियों की स्थिति चिंताजनक है बावजूद इसके भी महिलाओं ने अपने हुनर का परचम लहरा कर अपने अस्तित्व का निर्माण किया है।

भारतीय समाज में जिस गति से स्त्री की स्थितियों में परिवर्तन आया है वह नाटकों में उस तरह से नहीं दिखाई देता है, जो कि विषय आधारित नाटककारों के नाटकों से पता चलता है। चारों नाटकों में समय अंतराल होने पर भी समयानुसार स्त्री की समस्याओं को मुख्य विषय बनाया गया है। वर्तमान समय की बात करे तो, अब स्त्री इतिहास की रूढ़ियों पाखंडों आदि को

तोड़कर बहुत आगे आ चुकी है। अपने अस्तित्व, आत्मसम्मान की रक्षा करने के साथ एक मुक़ाम हासिल करने में पुरूषों के समकक्ष खड़ी हो चुकी है। अपने अधिकारों को अब वो जानती है और उन्हें पाने के लिए वह पूर्णताया सक्षम भी है। स्त्री-विमर्श ने स्त्रियों की स्थिति में बदलाव लाने में सर्वमान्य भूमिका निभाई है।

यदि स्त्री और पुरूष नाटककारों के नाट्य लेखन में स्त्री चरित्र की रचना की बात की जाए तो कुछ लोगों का मानना है कि पुरूष प्रधानता और पित्रसत्तात्मक पद्धति के कारण निश्चित तौर पर अंतर है। इसके विपरीत कुछ लोगों का मानना है कि हो सकता है पर है नहीं। स्त्री और पुरूष नाटककार एक ही काल में एक ही परिस्थिति में रहते हैं। उनकी सोच भी एक सी पुरूषवादी ही है।

नाटक समाज को परिभाषित करने का एक सशक्त माध्यम है। आज रंगमंच ऐसे नाटकों की आवश्यकता जो वर्तमान समय की परिस्थितियों को परिलक्षित करे। साहित्यकारों, नाट्य लेखकों आदि से विनम्र निवेदन है कि जब स्त्री समस्याओं की बात करे तो समानता के अधिकार के साथ मानवीय अधिकार को भी शामिल करे यदि सामाजिक संतुलन बनाए रखना है तो, नहीं तो कन्या भ्रूण मरती रहेंगी, दामिनी बलात्कार कांड होते रहेंगे। परिवार की केंद्र बिन्दु नारी होती है यदि वह अपनी धुरी से हिल गयी तो असंतुलन से उपजा विनाश अवश्य संभावी है। जब साहित्य, कला, विज्ञान आदि सभी क्षेत्रों में नारीवाद विश्वस्तर पर चर्चा का ज्वलंत मुद्दा बना हुआ है तो नाटक और रंगमंच पर भी पूर्णरूप से इसे शामिल करना चाहिए।

स्त्री को रंगमंच के क्षेत्र में भी समानता का अधिकार मिलना चाहिए ताकि वह, अपना निजी स्वतंत्र दृष्टिकोण स्थापित कर सके। स्त्री के दैहिक प्रदर्शन, वस्त्रों के संकुचन, विवाहेत्तर

संबंध, live-in-relationship आदि पर बहुत सी बहसें जारी हैं, पर वह या तो किताबों में सिमट कर रह जाते हैं या समाज के कटघरे में खड़े न्याय की गुहार लगाते रहते हैं।

अंततः यह बात सामने आती है कि चयनित हिंदी नाटकों में लेखकों ने समकालीन परिस्थितियों, स्त्री की समस्याओं को विषय बनाया है और नारी चेतना का पाठ भी पढ़ाया है। यहाँ एक ओर इतिहास की काल कोठरी से स्त्रियों के दमित,शोषित जीवन का कच्चा चिट्ठा खोला गया है और उसे फाड़कर फेका भी गया है। तो वहीं बदलते समय के साथ स्त्री की स्थिति में आया बदलाव भी प्रस्तुत हुआ है जिसे लेखक ने आधुनिक कलेवर लगाकर परोसा है।